आत्म-वैभव के विकास हेतु— प्रार्थना

□ डॉ० धनराज चौधरी

उपलब्ध आध्यात्मिक साहित्य को जब हम देखते हैं तो पूरी तरह प्रार्थना विषय को लेकर ही पुस्तकें नहीं के बराबर हैं, प्रार्थना पर कुछ छुट-पुट लेख मनीषियों के प्राप्य हैं मगर वे एक सामान्य साधक के लिए दुरूह, अस्पष्ट, अपूर्ण और अपर्याप्त हैं। उनसे प्रार्थी-इच्छुक का काम बनता नहीं—उसे जिज्ञासाओं का समाधान नहीं मिलता, उसे प्रार्थना करने की कोई आरंभिक उछाल भले ही मिल जाय परन्तु उस द्रव से नियमितता बनाये रखनेवाला ईंधन नहीं मिलता कि वांछित पौष्टिकता मिले और निरंतरता बनी रहे। सुमिरन, जप, भजन, शास्त्र, कीर्तन बहुत सी विविधताएँ उपलब्ध हैं कि जीव अपना आपा अरप सके, मन का संशय छूट सके, कर्मों का क्षय हो सके। अवश्य ही,

सभी रसायन हम करी, नहीं नाम सम कोय।
रंचक घट में संचरै, कंचन तब तन होय॥

दुनिया के सारे रसायनों को देख लिया, परन्तु नाम के बराबर कोई नहीं, उसकी एक बूंद भी यदि देह में रच जाय तो हमारा शरीर सोना हो जाय—जन्म लेना सार्थक हो जाय। अनूठेपन के लिए प्रसिद्ध मौलाना रूम फरमाते हैं—

'ई जहान जन्दां व माजन्दानियां।
हजरा कु जन्दां व खुद रा दार हां॥'

अर्थात् यह संसार कैदखाना है, इसमें हम कैद हैं, तू कैदखाने की छत में सुराख कर यहां से भाग छूट। निश्चय ही सुधि जन पदार्थ की कैद से परे हटना चाहता है मगर विविधताएँ इतनी हैं कि वह कभी-कभी तो अनजाने ही पुनः लिप्त हो जाता है। विधियाँ अनेक हैं, उन्हें दोष देना अनुचित है, हम ही भटक जाते हैं—क्षुद्रता में लक्ष्य को ओछा सीमित कर बैठते हैं। ऐसे में आगाह कौन करे, मूर्च्छा कैसे हटे ?

धार्मिक साहित्य के पाठकों को एक ऐसी पुस्तक की जोरों से तलाश है जो

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

कि प्रार्थना, वंदना, विनती के प्रयोजन के लिए प्रेक्टिकल बुक की भांति हो। जिस पुस्तक में क्या करें, कैसे करें, क्यों नहीं करें और किस तरह करें आदि आधारभूत बातों पर लेखक के स्वयं के मौलिक अनुभव हों, वर्तमान उपभोक्ता संस्कृति में प्रार्थना-पत्र, लेखन कला या एप्लिकेशन राईटिंग पर जेबी किताबों से लेकर सजिल्द लम्बी-ठिगनी, पतली-मोटी खरीदार की गुंजाइश के अनुरूप पुस्तकें खूब मिल जायेंगी, खैर ! हमें प्रार्थनाओं का संकलन नहीं चाहिए, प्रार्थन के महत्त्व पर मन लुभावन या पाण्डित्य लिए उपदेश नहीं बल्कि प्रार्थना कर सकें, प्रयोगशाला स्वयं बन जायं कि प्रयोग कर सकें, उसकी सहज मगर सम्पूर्ण विवरणिका की टोह है। एकदम पारदर्शी कथन जैसा कि ईसा मसीह ने कहा है—'हम जो जानते हैं वही करते हैं और जिसे हमने देखा है उसी की गवाही देते हैं', या कि 'दादू देखा दीदा' सब कोई कहत सुनीदा'।

ईस्वी सन् १९६० के मार्च महीने में होली से जरा पहले मगर बसन्त की ताजगी से ओज प्राप्त किए प्रातःकालीन प्रवचन के उन श्रोताओं का जीवन धन्य हो उठा होगा जिन्होंने आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज साहब के श्रीमुख से प्रार्थना विषय पर कहे गये शब्दों का रसपान किया होगा। आचार्य श्री के प्रभा मण्डल में बैठना अतीन्द्रिय कम्पनों से रोम-रोम जागृत हो जाना, गहन शांतिमयी व्यक्तित्व के ऐसे सद्गुरु से शिक्षित होना, जन्म-जन्मों के पुण्यों के प्रताप से ही संभव है। फिर भी उन प्रवचनों के साफ सुथरे संग्रह **"प्रार्थना प्रवचन"** जिसे सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर ने प्रकाशित किया है, का हाथ लग जाना, अच्छे प्रारब्ध का ही प्रतिफल है।

प्रार्थना को परिभाषित करते हुए महाराज साहब फरमाते हैं, "चित्तवृत्ति की तूली को परमात्मा के साथ रगड़ने का विधिपूर्वक किया जाने वाला प्रयास ही प्रार्थना है"। हमारी इच्छाएँ, मन के भटके आदि सांसारिक चीजों के साथ रगड़ खिला-खिला कर हमें लगातार शक्तिहीन किए जा रहे हैं, जरा सोचें, क्या हमने इसलिए जन्म पाया था कि हमारा लक्ष्य दुनियादारी के कबाड़े को इकट्ठा करना ही रह जाय। पंचभूतों की यह साधना-सामग्री, हमें पढ़ने हेतु जो उपलब्ध हुई थी, से अवसाद की कमाई लेकर फिर से साधारण बहुरूपिये की तरह कोई नया लिबास ओढ़ने को बाध्य हो जायं। महाराज सा० सावधान करते हैं—'अगर तूली को आगपेटी से रगड़ने के बदले किसी पत्थर से रगड़ा जाय तो कोई फल नहीं होगा बल्कि उसकी शक्ति घट जायेगी। तूली और मानवीय चितवृत्ति में एक बड़ा अन्तर है कि माचिस का तेज तो जरा देर का होता है, परन्तु जब व्यक्ति के मन की अवस्था परमात्मा से रगड़ खाती है तो उससे जो तेज प्रकट होता है वह देश और काल की परिधि को तोड़ता हुआ असीम हो जाता है।' "पर्दा दूर करो" अध्याय से रहस्य खुलकर सामने आता है। आत्मा

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

के लिए सजातीय पदार्थ परमात्मा है और जड़ वस्तुएँ विजातीय हैं जो विष की भाँति हैं। सजातीय से मिलाप ही स्वाभाविक और स्थायी हो सकता है, इस हेतु महाराज साहब फरमाते हैं, "हमारी प्रार्थना का ध्येय है—जिन्होंने अज्ञान का आवरण छिन्न-भिन्न कर दिया है, मोह के तमस को हटा दिया है, अतएव जो वीतरागता और सर्वज्ञता की स्थिति पर पहुँचे हुए हैं, जिन्हें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त बल, अनन्त शांति प्राप्त हुई है, अनन्त सुख-सम्पत्ति का भण्डार जिनके लिए खुल गया है, उस परमात्मा के साथ रगड़ खाना और इससे आशय है अपने अंतर की ज्योति जगाना"।

श्री तुलसी साहब की कुछ पंक्तियों का यहाँ याद आ जाना उपयुक्त ही जान पड़ता है—

जग जग कहते जुग भये, जगा न एको बार।
जगा न एको बार, सार कहो कैसे पावे।।
सोवत जुग जुग भये, संत बिन कौन जगावे।
पड़े भरम के मांहि, बंद से कौन छुड़ावे।।

वस्तुतः साधक की नींद टूट भी जाय तो अपराध बोध के मारे सांस घुट-घुट जाती है—मुझ में तो काम, क्रोध, मद, माया, मान, मोह आदि दोष भरे हुए हैं। मैं उस शिव स्वरूप सिद्ध स्वरूप से रगड़ कैसे खाऊँ? व्यावहारिकता के इस सशोपंज की स्थिति से घिरे हुए को महाराज सा० की आश्वस्ति है—"भाई, बात तुम्हारी सच्ची है, मैं अशुद्ध हूँ, कलंकित हूँ, कल्मषग्रस्त हूँ, मगर यह भी सत्य है कि ऐसा होने के कारण ही यह प्रार्थना कर रहा हूँ। अशुद्ध न होता तो शुद्ध होने की 'प्रार्थना क्यों करता? जो शुद्ध है, बुद्ध है, पूर्ण है उसे प्रार्थना दरकार ही नहीं होती।"

निश्चय ही यहाँ प्रार्थी बड़े सुख का अनुभव करता है। होने की भावना उसमें उग आई कि प्रार्थना औषधि तो बनी ही मुझ रोगी के लिए है। दर्पण की भांति स्वच्छ हुआ प्रार्थी अब मानो हाथ जोड़े खड़ा है। पूछता हुआ—भगवन्! कृपा कर यह भी बता दीजिये कि प्रार्थना में करना क्या होता है? साफ सुथरी जिज्ञासा का सटीक ही समाधान उपलब्ध है प्रवचन में—"हमें किसी भाँति का दुराव-छिपाव न रखकर अपने चित्त को परमात्मा के विराट स्वरूप में तल्लीन कर देना है। किसी अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं है। हमें तो परमात्मा के स्वरूप के साथ मिलकर चलना है"—

दिल का हुजरा साफ कर, जानां के आने के लिए।
ध्यान गैरों का उठा, उसको बिठाने के लिए।।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

कहीं यह भूल न पड़े कि मैं बड़ा ज्ञानी हूँ, बड़ा साधक हूँ, धनी हूँ, पदाधिकारी हूँ, अहंकार के ऐसे भाव हैं तो वे तूली के मसाले को गीला-नम करते हैं और तब हमारी मनोदशा परमात्मा के साथ वांछित शक्ति से रगड़ न खा पायेगी ताकि अन्दर की ज्योति प्रगट हो जाय।

यहाँ पीपाजी महाराज के एक पद को उद्धृत करना उचित जान पड़ता है जिसमें बाहरी प्रयत्नों को छोड़कर अपने अंदर की यात्रा के लिए साधक को उकसाया गया है—

कायउ देवा काइअउ देवल, काइअउ जंगम जाती,
काइअउ धूप दीप नइबेधा, काइअउ पूजा पाती।

काइआ बहुखण्ड खोजते, नवनिधि पाई,
ना कुछ आइबो ना कुछ जाइबो, राम की दुहाई।

जो ब्रह्माण्डे सोई पिण्डे जो खोजे सो पावै,
पीपा प्रणवै परम ततु है, सद्गुरु होई लखावै।

काया के अन्दर ही सच्चा देवता है, काया में ही हरि का निवास है, काया ही सच्चा यात्री है, काया ही धूप, दीप और प्रसाद है और काया में ही सच्चे फूल और पत्ते हैं। जिस वस्तु को जगह-जगह ढूंढ़ते हैं वह काया के अन्दर मिलती है। जो अजर अविनाशी तत्त्व आवागमन से ऊपर है, वह भी काया के भीतर है। जो कुछ सारी सृष्टि में है वह सब कुछ काया के अन्दर भी है। पीपाजी कहते हैं परमात्मा ही असल सार वस्तु है। वह सार वस्तु सबके अंतर में विद्यमान है। पूरा सतगुरु मिल जाय तो वह उस वस्तु को अंदर ही दिखा देता है।

"प्राथना का अद्भुत आकर्षण" नाम अध्याय सोये हुए को जगाता ही नहीं बल्कि ऊर्जा से छलाछल भर देता है। आचार्य प्रवर वह गुर प्रदान करते हैं जिससे कि आत्मिक ऊष्मा रूबरू प्रकट हो जाय। किस प्रकार की प्रार्थना की जाय कि वह कारगर हो ? निश्चय ही पहले तो बुहारी लगानी होगी कि साधक का अंतःकरण शांत, स्वच्छ और इन्द्रियाँ अपने बस में आ जायं। आचार्य श्री इस तैयारी के बाद प्रार्थी को सोदाहरण बताते हैं कि प्रार्थना में मांग हो तो भी कैसी ? उदाहरण हैं मानतुंग आचार्य का निवेदन और चंदनबाला सती का द्रवित हो उठना। 'भक्तामर स्तोत्र' में, आओ मुझे बचाओ या मेरी जंजीरें काटो सी मांग नहीं है। तलघर से निकाली गई तीये के पारणे से पूर्व की चन्दनबाला सती के हाथ में दान देने के लिए बाकले हैं, उत्तम पात्र द्वार आये भी मगर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मुड़कर जा रहे हैं बिना भिक्षा ग्रहण किये, अपनी ही किसी कमी को स्वीकारती चंदनबाला के नेत्र आर्द्र हुए और लो बरस पड़े—और भगवान प्रस्तुत हैं दान ग्रहण करने हेतु····रवीन्द्रनाथ ठाकुर के 'गीतांजलि' संग्रह में एक कविता है "विपदाओं से बचाओ !" रविबाबू की विनती है—

'विपदाओं से मुझे बचाओ
यह प्रार्थना मैं नहीं करता ।
प्रार्थना है, विपदाओं का भय न हो ।
दुःख से पीड़ित हृदय को भले ही सांत्वना न दो,
पर शक्ति दो,
दुःखों पर हो मेरी विजय'
एक और भी कविता द्रष्टव्य है—
'विकसित करो,
हमारा अन्तरतर, विकसित करो, हे !
उज्ज्वल करो,
निर्मल करो,
सुन्दर कर दो, हे !
करो जाग्रत,
करो निर्भय,
करो उद्यत, निर्भय कर दो हे !

आप से "प्रार्थना प्रवचन" के पृष्ठ १२७ से कुछ निर्देश उद्धृत करने की अनुमति चाहता हूँ—'शब्दों का उच्चारण करते-करते इतना भावमय बन जाना चाहिए कि रोंगटे खड़े हो जायं । अगर प्रभु की महिमा का गान करें तो पुलकित हो उठें । अपने दोषों की पिटारी खोलें तो रुलाई आ जाय । समय और स्थान का खयाल भूल जाय—सुधबुध न रहे, ऐसी तल्लीनता, तन्मयता और भावावेश की स्थिति जब होती है तभी सच्ची और सफल प्रार्थना होती है ।"

हिसाब लगायें तो आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज साहब ने समाज को जितना दिया उसके अंश का भी उल्लेख करें तो पर्याप्त समय चाहिए। टीका सहित प्रस्तुत करने में अच्छे शोध और श्रम की मांग है, 'पर स्वारथ के कारने संत लियौ औतार', महाराज सा० से प्रत्यक्ष बातचीत, प्रवचन या उनके कृतित्व से जो मूल स्वर प्राप्त होते हैं, उनमें से प्रमुख है परमतत्त्व का स्मरण। सूत्र कहें तो स्वाध्याय को मार्गदर्शक मानना और प्रेम ऐसा जैसे—

जल ज्यों प्यारा माछरी, लोभी प्यारा दाम ।
माता प्यारा बालका, भक्त पियारा नाम ।।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मुझे उनके श्रीमुख से निकला सारतत्त्व सुनाई दिया था—नवकार मंत्र का पाठ करो। उनकी छवि का स्मरण करते मुझे जान पड़ता है कि मुंहपत्ती के पीछे जप करते हुए नहीं सी गति करते होठ हैं और तो और पूरी ही देह अजपा-जप कर रही है। प्रसादी में हमें प्रार्थना पकड़ाते हुए वे प्रतीत होते हैं। भाव-भूमि से लौट हम धरती की सांस लें तो मुझे विश्वास आता है कि उनका मिशन रहा—भटके जीव को सच्चे प्रार्थी में बदल देना—निज स्वरूप के प्रति व्यष्टि को सचेष्ट कर दें—उसे समस्त आधि, व्याधि दूर करने की जुगत बता दें—

भीखा भूखा कोई नहीं, सबकी गठरी लाल।
गिरह खोल न जानसी, ताते भये कंगाल॥

'मैं हूँ उस नगरी का भूप' नामक कविता ने कितना सबल कर दिया निराश्रित सी स्थिति में बैठे जीव को।

मैं न किसी से दबनेवाला, रोग न मेरा रूप।
'गजेन्द्र' निज पद को पहचाने, सो भूपों के भूप॥

प्रार्थना विषय पर दिये व्याख्यान सचमुच में निर्बल का बल है; एक अनाड़ी के लिए वह हितैषी पथप्रदर्शिका पुस्तक है, क्योंकि वह पुरुषार्थी बनाती है—"मेरे अन्तर भया प्रकाश, नहीं अब मुझे किसी की आश।"

मैं अपना निवेदन समाप्त करने से पूर्व कहना चाहता हूँ कि इन प्रवचनों से ईसा मसीह के ये उद्‌गार वास्तविकता बनकर हमारे सामने आते हैं—"जो कोई उस जल में से पियेगा, जो मैं उसे दूंगा, वह फिर कभी प्यासा न होगा। लेकिन वह जल जो मैं उसे दूंगा, उसके अंतर में जल का एक सोता बन जायेगा जो अनंत जीवन में उमड़ पड़ेगा।"

—एसोशियेट प्रोफेसर, भौतिक शास्त्र विभाग
राजस्थान वि० वि०, जयपुर

- अन्तःकरण से उद्‌भूत प्रार्थना ही सच्ची प्रार्थना है।
- वीतराग की प्रार्थना क्षीर सागर का मधुर अमृत है।
- प्रार्थना का प्राण भक्ति है।

—आचार्य श्री हस्ती

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org